RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-18, अंक-1, दिसम्बर 2024 जनवरी फरवरी 2025

रासो
त्रैमासिक शोध पत्रिका
2005
॥ स्वस्ति पन्थामनु चरेम ॥

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-18 अंक - 1 दिसम्बर-2024, जनवरी-फरवरी-2025

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टिट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

महर्षि दयानन्द की गुण, कर्म, स्वभावानुसार वर्ण व्यवस्था की मीमांसा

अनिता मालिया
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारतीय नवजागरण के समय समाज जन्मना जाति-भेद, छुआछूत, अन्धविश्वास और शिक्षा-वंचना से गहरे प्रभावित था। इसी वातावरण में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों के आधार पर यह स्पष्ट किया कि वर्ण जन्म से नहीं, बल्कि मनुष्य के गुण, कर्म और स्वभाव से निर्धारित होता है। उन्होंने कहा कि कोई भी व्यक्ति किसी भी परिवार में जन्म लेकर भी अपने आचरण, विद्या और चरित्र के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र बन सकता है। जन्म से श्रेष्ठ या नीच होना वेद-विरुद्ध है; वास्तविक श्रेष्ठता कर्म और नैतिकता में है।

दयानन्द के अनुसार ब्राह्मण वह है जो ज्ञान, सत्य और तप के मार्ग पर चले; क्षत्रिय वह जो रक्षा और शासन में दक्ष हो; वैश्य वह जो उत्पादन और व्यापार का संचालन करे; और शूद्र वह जो सेवा, श्रम और कौशल से समाज की आवश्यकताओं को पूरा करे। यह व्यवस्था किसी ऊँच-नीच पर नहीं बल्कि कार्य-विभाजन और योग्यता पर आधारित है तथा जीवनभर परिवर्तनीय है।

आर्य समाज के माध्यम से उन्होंने स्त्री-शूद्रों के लिए वेदाधिकार और शिक्षा के द्वार खोले। इससे समाज में जन्मना जाति-वाद के विरुद्ध नई चेतना जागी और समता, शिक्षा तथा आत्मसम्मान की भावना प्रबल हुई। संक्षेप में, महर्षि दयानन्द की वर्ण-मीमांसा एक न्यायपूर्ण, तर्कसम्मत और योग्यता-आधारित सामाजिक व्यवस्था का प्रतिपादन करती है, जो भारतीय नवजागरण की प्रमुख आधारशिला बनी।

उन्नीसवीं शताब्दी के भारत में जाति-पांति की विसंगतियाँ इतनी जड़ पकड़ चुकी थीं कि ऊँची जातियों के लोग निम्न जातियों को देखते तक से कतराते थे। समाज इस हद तक कुसंस्कारित था कि अपने ही देशवासियों का स्पर्श पाप समझा जाता था। विदेश यात्रा कर लेने मात्र से या किसी विदेशी के छू जाने से व्यक्ति को जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था। यह स्थिति केवल सामाजिक भेदभाव की नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना के गहन पतन का भी सूचक थी। ऐसे वातावरण में एक सुधारक के लिए यह अत्यन्त कठिन चुनौती थी कि वह इन जमी हुई धारणाओं को तोड़े और समाज को मानवता, समानता तथा विवेक के मार्ग पर अग्रसर करे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती केवल धर्म के मर्मज्ञ और वेद-व्याख्याता ही नहीं थे, बल्कि एक सामाजिक चिन्तक और कर्मयोगी सुधारक भी थे। सामान्यत: संन्यासी जीवन लोकव्यवहार से दूर माना जाता है, परन्तु

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

दयानन्द इस मर्यादा के अपवाद थे। उन्होंने स्पष्ट कहा कि संसार के कष्टों की उपेक्षा करके केवल परलोक-साधना में लग जाना संन्यासी का कर्तव्य नहीं है। उनके अनुसार, लोकहित के लिए स्वयं को समर्पित करना ही वास्तविक धर्म है। वे यह तक कह देते थे कि यदि मानव समाज के कल्याण के लिए ब्रह्मानन्द जैसे सर्वोच्च आध्यात्मिक सुख का भी त्याग करना पड़े, तो वे उसे भी अपनाने में संकोच नहीं करेंगे। दयानन्द के इस दृष्टिकोण से स्पष्ट है कि वे समाज के दुख-दरिद्र की उपेक्षा करने वाले दार्शनिक नहीं, बल्कि मानवता के प्रति संवेदनशील और कर्तव्यनिष्ठ सामाजिक सुधारक थे।

उनके समकालीन और पूर्ववर्ती सुधारक—राजा राममोहन राय, पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और केशवचन्द्र सेन—ने भी सामाजिक कुरीतियों पर तीखा प्रहार किया था। राममोहन राय ने नारी-विरोधी सती-प्रथा को कानूनन समाप्त कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विद्यासागर ने भारतीय समाज में विधवाओं की दयनीय स्थिति देखकर विधवा-विवाह को वैध कराने के लिए कठोर संघर्ष किया और 1856 ई. का कानून पारित कराया। केशवचन्द्र सेन की नारी-शिक्षा और उत्थान में विशेष रुचि थी और उन्होंने समाज को नारी-सम्बन्धी प्रश्नों पर जागृत करने का सतत प्रयास किया।

इसी सुधार-परम्परा में महर्षि दयानन्द ने न केवल नारी की स्थिति, बल्कि जाति-पांति, छुआछूत, धार्मिक अन्धविश्वास और जन्मना ऊँच-नीच जैसी सामाजिक विकृतियों के उन्मूलन का संकल्प लिया। उन्होंने वेदों के मूल सिद्धान्त—समता, विद्या-अधिकार और कर्मप्रधानता—को पुनर्जीवित किया और समाज को यह बताया कि मनुष्य की वास्तविक श्रेष्ठता जन्म में नहीं, बल्कि उसके गुणों, कर्मों और स्वभाव में है। इस प्रकार दयानन्द ने सामाजिक जागृति की वह ज्योति जगाई जिसने भारतीय नवजागरण को व्यापक गति प्रदान की।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय समाज में सुधार की कई पहल हुईं। इसमें सन्देह नहीं कि बंगाल का ब्राह्म समाज हिन्दू धर्म की पुरानी रूढ़ियों और कुरीतियों को दूर करने में महत्वपूर्ण कार्य करने में सफल रहा। परंतु समाज में व्याप्त जाति-पांति और ऊँच-नीच के भेदभाव जैसी मूलभूत बुराई की ओर उन्होंने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया और इसे दूर करने में सफलता नहीं प्राप्त हुई। महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज ने अछूतोद्धार, स्त्री-शिक्षा, जाति-भेद का विरोध, अंतर्जातीय विवाह और विधवा विवाह जैसे विषयों पर जोर दिया, लेकिन इसका प्रभाव केवल महाराष्ट्र तक सीमित रहा और यह पूरे भारतव्यापी सुधार आंदोलन का रूप नहीं ले सका।

भारतीय सामाजिक संगठन की सबसे गंभीर समस्या जातिभेद है, जिसके कारण समाज का बड़ा वर्ग—विशेषकर दलित समुदाय—मानवता के मूल अधिकारों से वंचित रहा। ऊँच-नीच और छूत-अछूत के भेद भारत के सामाजिक ताने-बाने के लिए घोर अभिशाप बने हुए थे। पाश्चात्य शिक्षा और विज्ञान से प्रभावित कई सुधारक इस समय समाज सुधार के विविध कार्यों में संलग्न थे, परंतु जाति-भेद जैसी जड़ित कुप्रथा के उन्मूलन में वे प्रभावी साबित नहीं हुए।

वास्तव में, भारत के इतिहास में अकेले महर्षि दयानन्द सरस्वती ऐसे चिंतक और समाजसुधारक थे जिन्होंने इस गंभीर सामाजिक बीमारी के मूल कारणों को स्पष्ट रूप से पहचाना और इसके निवारण के लिए क्रियात्मक तथा सशक्त उपाय प्रस्तुत किए। उन्होंने जाति के जन्मनिष्ठ आधार को असत्य और अवैदिक

घोषित कर समानता, शिक्षा और कर्मप्रधानता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था का प्रतिपादन किया। आर्य समाज के माध्यम से उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों और कर्तव्यों में समान हो, जिससे भारतीय समाज में वास्तविक सामाजिक सुधार और राष्ट्रव्यापी जागृति संभव हो सके।

वेदों के अनुसार आर्यों ने वर्णाश्रम धर्म को अपनाया और इसके नियमन का आधार गुण, कर्म और स्वभाव माना। उनके विचार में गुरूकुल में आचार्य ही ब्रह्मचारी को उसके गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार उचित वर्ण प्रदान करता है; जन्म से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं होता। धर्माचार और तप से निम्न वर्ण का व्यक्ति उच्च वर्ण को प्राप्त कर सकता है, और अधर्म या अवांछनीय कर्म करने से उच्च वर्ण का व्यक्ति निम्न वर्ण में गिर सकता है। इस दृष्टिकोण से स्पष्ट है कि वर्णभेद का आधार जन्म नहीं, बल्कि कर्म और गुण होना चाहिए।

यह विचार नया नहीं था; भगवद्गीता में कृष्ण ने भी स्पष्ट रूप से कहा है कि चातुर्वर्ण्य की उत्पत्ति गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर हुई है। बुद्ध और महावीर ने भी जन्म के आधार पर किसी को ऊँचा या नीचा मानने को स्वीकार नहीं किया। मध्यकालीन संत और भक्ति मार्ग के अनुयायी भी जाति भेद का पालन नहीं करते थे। परन्तु इन सुधारकों की एक सीमा थी—जब तक किसी व्यक्ति को शिक्षा और अपनी अंतर्निहित शक्तियों का विकास करने का अवसर नहीं मिलता, तब तक उसके गुण और कर्म का वास्तविक विकास संभव नहीं है। यदि शूद्र कुल में जन्मे व्यक्ति को उपनयन संस्कार और शिक्षा से वंचित रखा गया, तो वह ब्राह्मण या क्षत्रिय वर्ण की योग्यताओं का विकास कैसे कर सकता था।

महर्षि दयानन्द ने इस तथ्य को स्पष्ट रूप से समझा और प्रतिपादित किया कि सभी बच्चों और बालिकाओं को समान शिक्षा का अवसर मिलना चाहिए, चाहे वे किसी भी वर्ण या कुल में जन्में हों। उन्होंने स्त्रियों और शूद्रों की शिक्षा के पक्ष में प्रबल समर्थन दिया और यह सुनिश्चित किया कि शिक्षा के समान अवसर से ही गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर समाज में वास्तविक योग्यता और वर्ण निर्धारण संभव हो।

महर्षि दयानन्द ने यह स्पष्ट किया कि सभी मनुष्यों को वेद और अन्य शास्त्र पढ़ने-सुनने का समान अधिकार है। उन्होंने यजुर्वेद के 26वें अध्याय के दूसरे मंत्र का उद्धरण देकर इसे प्रमाणित किया:

'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।।'

स्वामी जी की इस क्रान्तिकारी घोषणा के परिणामस्वरूप स्त्रियों और शूद्रों को भी यज्ञोपवीत और अन्य संस्कार प्राप्त होने लगे, जिससे समाज में आत्मोत्थान और स्वस्थ प्रतिस्पर्धा की भावना उत्पन्न हुई। सदियों तक उपेक्षित वर्गों में आशा की किरण फूटी। वेदों के मंत्रों को सुनने मात्र से जिन्हें पहले पौराणिक पण्डों ने अक्षम समझा और शास्त्रानुसार उनसे दूर रखा, वे अब वेदविद्वान बने। अनेक नारियों ने वेद और शास्त्रों में पारंगत होकर कन्या गुरूकुलों की अधिष्ठात्रियाँ बनकर वेद-विद्या के प्रचार-प्रसार में अपना जीवन समर्पित किया।

इस व्यवस्था का सामाजिक फल यह हुआ कि गुण-कर्म-स्वभावानुसार वर्ण का सिद्धांत व्यवहार में

भी प्रभावी हुआ। उच्च वर्ण के लोग अपने बच्चों की शिक्षा और पालन-पोषण पर विशेष ध्यान देने लगे ताकि उनका बच्चा गुणों और कर्मों के आधार पर उच्च स्थान प्राप्त करे। वहीं, निम्न वर्ण के लोग भी अपने बच्चों को समान अवसर देने लगे, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को बिना भेदभाव के अपनी योग्यता और क्षमता विकसित करने का अवसर प्राप्त हुआ। इस प्रकार शिक्षा और संस्कार का समान वितरण समाज में वास्तविक समता और गुण-प्रधान व्यवस्था का आधार बना।

वर्ण व्यवस्था में महर्षि दयानन्द के अनुसार गुण, कर्म और स्वभाव ही किसी व्यक्ति के वर्ण का निर्धारण करते हैं। यहाँ गुण का अर्थ है योग्यता, कर्म का अर्थ है व्यवसाय या कर्तव्य, और स्वभाव का अर्थ है आदत या प्रवृत्ति। इस प्रकार किसी व्यक्ति की योग्यता, व्यवसाय और आदत उसके सामाजिक और वैदिक वर्ण को निर्धारित करती है।

ऋग्वेद का प्रसिद्ध मंत्र है—

'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत।।'

पौराणिक विद्वानों ने इसे अक्सर गलत तरीके से उद्धृत किया है, जैसे— 'ब्राह्मण ब्रह्म (ईश्वर) के मुख से उत्पन्न हुआ, क्षत्रिय उनकी भुजाओं से, वैश्य उनके पेट से और शूद्र उनके पैरों से।' महर्षि दयानन्द ने इसका स्पष्ट प्रत्याख्यान प्रस्तुत किया। उनके अनुसार समाज में मुख्य नेतृत्व क्षमता और वैचारिक श्रेष्ठता के कारण ब्राह्मण को उच्च माना गया, और क्षत्रिय को बल, शौर्य और पराक्रम के कारण समाज रूपी शरीर की भुजा के तुल्य माना गया। इसी प्रकार व्यापार और यात्रा से जुड़े वैश्य को शरीर के ऊरु (कटि) भाग के रूप में देखा गया, और श्रम एवं सेवा द्वारा समाज का आधार बनने वाले शूद्र को पैरों के समान मूलभूत स्थान प्राप्त हुआ।

दयानन्द ने मनुस्मृति के आधार पर यह भी स्पष्ट किया कि यदि कोई शूद्र गुण, कर्म और स्वभाव में श्रेष्ठ हो, तो वह ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सकता है। इसके विपरीत, यदि कोई ब्राह्मण निन्दनीय कर्म करता है और अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करता, तो वह अपनी द्विजोचित श्रेष्ठता खोकर शूद्र बन सकता है। इस प्रकार उन्होंने जन्म के आधार पर वर्ण निर्धारित करने की प्रथा को पूर्णतः खारिज करते हुए गुण-कर्म-स्वभाव आधारित वर्ण व्यवस्था का सिद्धांत प्रतिपादित किया।

महर्षि दयानन्द ने जन्मकृत वर्ण व्यवस्था की तुलना में गुण-कर्म-कृत व्यवस्था में भी शूद्रों या निम्न वर्ग के प्रति किसी प्रकार का भेदभाव स्वीकार नहीं किया। उनके अनुसार शूद्र भी सम्मान के लिए उतने ही अधिकारी हैं जितने अन्य वर्णों के व्यक्ति। इसी दृष्टि से उन्होंने समाजिक रूढ़ियों को तोड़ते हुए 'साध' और 'नापित' द्वारा परोसे गए भोजन को ग्रहण किया और कहा कि इसमें कोई दोष नहीं है। यह स्पष्ट संदेश था कि जाति या जन्म के आधार पर किसी का उपेक्षण या तिरस्कार करना वेद-विरुद्ध है।

दयानन्द द्वारा जन्मना जाति को वेद-विरुद्ध घोषित करना उस समय एक विशाल क्रान्तिकारी कदम था। इससे पहले किसी मनीषी ने भी जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था को वेदविरुद्ध नहीं कहा था। हजारों वर्षों से शास्त्र के नाम पर लोगों में डाली गई मानसिक गुलामी को उन्होंने एक झटके में तोड़ दिया। इस क्रांतिकारी घोषणा ने समाज को नया उत्साह और आत्मविश्वास प्रदान किया। करोड़ों लोग अपने जीवन और अधिकारों

के प्रति जागरूक हुए।

जन्मना ब्राह्मणवाद इस घोषणा से चरमराने लगा। इसका प्रमाण यह है कि पूना में दयानन्द के व्याख्यान पर आयोजित स्वागत जुलूस का नेतृत्व एक अब्राह्मण—महात्मा ज्योतिबा फूले ने किया, जबकि उस समय पुराणपंथी हिन्दू और ब्राह्मण समुदाय इसका जबरदस्त विरोध कर रहे थे। यह घटना स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि दयानन्द की शिक्षाओं ने सामाजिक कुरीतियों और जन्माधारित श्रेष्ठता की मानसिकता को चुनौती दी और समाज में समानता और न्याय के नए विचार स्थापित किए।

स्वामी दयानन्द के अनुसार प्रारंभ में वर्ण व्यवस्था तब सफल और न्यायपूर्ण थी जब समाज में आपसी संघर्ष नहीं था और शांति बनी रहती थी। उन्होंने कहा कि जब वर्ण व्यवस्था जन्मानुसार हो गई और आश्रम व्यवस्था विखंडित हुई, तब से ही समाज में संघर्ष शुरू हुआ और यह आगे चलकर जन्मना जाति प्रथा में बदल गई।

महर्षि दयानन्द ने इस सामाजिक रोग को एक कुशल चिकित्सक की तरह पहचाना और उसका सम्यक निदान प्रस्तुत किया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि जाति-प्रथा केवल समाज में असमानता पैदा करती है और इसके उन्मूलन के लिए जागरूकता, शिक्षा और वेदाधारित सिद्धांत आवश्यक हैं। इस दृष्टि से वे न केवल धर्मसुधारक बल्कि महान समाज सुधारक भी थे।

उनकी दृष्टि में सभी मनुष्य परमपिता परमेश्वर की संतान हैं, अत: सभी समान रूप से सम्मान के पात्र हैं। कोई व्यक्ति ऊँचा नहीं और कोई अछूत नहीं है। वैदिक धर्म किसी को अछूत नहीं मानता। दलितों की दुर्दशा देखकर स्वामी जी अत्यंत विचलित होते थे; कभी-कभी उन्हें रातभर नींद भी नहीं आती थी। वे यह सोचते थे कि जब ईसाई पादरी हिन्दू कोलियों, भीलों और दलितों को धर्मान्तरित करने के लिए तत्पर रहते हैं, तब हिन्दू धर्माचार्य कुम्भकर्णी नींद में सोए हुए हैं, और यही स्थिति समाज के लिए खतरनाक थी।

इस प्रकार, महर्षि दयानन्द ने न केवल जाति-भेद की वास्तविकता को उजागर किया, बल्कि उसके उन्मूलन और सभी के लिए समान अवसर और सम्मान सुनिश्चित करने के लिए सशक्त उपाय और सामाजिक चेतना भी प्रस्तुत की।

स्वामी दयानन्द दलितों पर हो रहे अत्याचारों से गहरे दु:खी थे और उनकी दलितोद्धार के लिए सतत् जागरूक रहते थे। उनका मत था कि समाज में दलितों को सम्मान मिले और ऊँच-नीच का भेदभाव मिटे, इसलिए ब्राह्मणादि वर्णों को शूद्र द्वारा पकाया गया भोजन ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि उस समय खान-पान में छुआछूत का विशेष ध्यान रखा जाता था। उनका यह संकल्प न केवल धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था, बल्कि राष्ट्रीय एकता, अखंडता और संप्रभुता के लिए भी आवश्यक था। स्वामीजी का मानना था कि आर्यावर्त का प्राचीन वैभव तभी पुन: स्थापित हो सकता है जब वेद की आज्ञा के अनुसार सभी के सुख और स्वास्थ्य की कामना की जाए और किसी के प्रति दु:ख या क्लिष्टता की इच्छा न रखी जाए।

महर्षि दयानन्द ने दलितोद्धार के लिए वेद और शास्त्रों के प्रमाण भी प्रस्तुत किए और निर्भीक स्वर में दलितोद्धार तथा शुद्धि का संदेश दिया। वे पहले ऐसे व्यक्तित्व थे जिन्होंने राष्ट्र का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। उन्होंने पूरे भारत को एक मानव शरीर के रूप में कल्पित किया, जिसमें ब्राह्मण, शूद्र आदि विभिन्न अंग हैं; किसी अंग को पीड़ा होने पर पूरा शरीर पीड़ित होता है।

स्वामीजी शूद्रों को सृष्टिकर्ता की सर्वोत्तम कृति मानते थे। यजुर्वेद के मंत्र का भाष्य करते हुए उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की कि 'दु:ख से उत्पन्न होने वाले, सेवा और प्रेम के माध्यम से शुद्धि करने वाले शूद्र को सम्पूर्ण रूप से उत्थान प्रदान किया जाए।' इस प्रकार उन्होंने दलितों को सम्मान, शिक्षा और अधिकार दिलाने का मार्ग प्रस्तुत किया और समाज में समानता तथा न्याय की भावना को दृढ़ किया।

महर्षि दयानन्द ने शूद्रों और निम्न वर्ग के लोगों को गुरूकुल में वेद अध्ययन का अधिकार प्रदान किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र-सूर्य और अन्नादि पदार्थ सभी के लिए बनाए गए हैं, वैसे ही वेद का प्रकाश भी सम्पूर्ण मानवता के लिए किया गया है।

उनके प्रगतिशील दृष्टिकोण की क्रियात्मक परिणति कई उदाहरणों से स्पष्ट होती है। रूड़की में दलित वर्ग माने जाने वाले एक मजहबी सिक्ख को दयालुतापूर्वक समान व्यवहार देना, कानपुर में पंडितों के विरोध के बावजूद नीच समझे जाने वाले कायस्थ के घर रुकना, फर्रूखाबाद में साध के मेहनत से उपर्जित भोजन ग्रहण करना, और गढ़ मुक्तेश्वर में मांझी के हाथ की रोटी खाना—ये सभी उनके विचारों के व्यवहारिक उदाहरण हैं।

महर्षि दयानन्द के प्रेरक विचारों से उनके अनुयायियों ने दलितोद्धार का कार्य निष्ठा और विश्वास के साथ प्रारम्भ किया। मुजफ्फरगढ़ में पंडित गंगाराम ने 'आर्य दलितोद्धार पाठशाला' की स्थापना कर दलितों को शिक्षित करना शुरू किया। इसके बाद 1900 ई. में जयपुर राज्य में आर्य समाज ने अछूत बस्तियों और मोहल्लों में पाठशालाओं की स्थापना कर नि:शुल्क शिक्षा का प्रबंध किया। इस प्रकार महर्षि दयानन्द और उनके अनुयायियों ने समानता, शिक्षा और सामाजिक उत्थान के लिए ठोस और प्रभावशाली कार्य किए।

5 जुलाई, 1934 को महात्मा गांधी अजमेर आए और आर्यसमाज अजमेर के मंत्री घीसूलाल एडवोकेट तथा डी.ए.वी. स्कूल के छात्रों के साथ हरिजन बस्तियों का भ्रमण किया। इस दौरान वे आर्यसमाज द्वारा किए गए अछूतोद्धार संबंधी कार्यों से गहराई से प्रभावित हुए।

हिंदू समाज में अछूतों की समस्या के समाधान के लिए आर्यसमाज ने जो प्रयास किए, उससे प्रेरित होकर गांधीजी ने अछूतोद्धार को संगठित आन्दोलन का रूप प्रदान किया। इसी कारण उन्होंने महर्षि दयानन्द सरस्वती के दलितोद्धार एवं अस्पृश्यता के क्षेत्र में योगदान को 'मूल्यवान विरासत' कहा।

महर्षि दयानन्द के सुधार कार्यों से प्रभावित होकर, फ्रांसीसी लेखक रोमा रोलाँ ने भी उनका सम्मान करते हुए कहा कि वे अस्पृश्यता के घृणित अन्याय को सहन नहीं करते थे और पददलितों के अधिकारों के समर्थक के रूप में उनसे बढ़कर कोई नहीं था। इस प्रकार महर्षि दयानन्द का योगदान न केवल धार्मिक और सामाजिक सुधार में बल्कि दलितों के अधिकारों और समानता के क्षेत्र में भी क्रांतिकारी और दूरगामी रहा।

सारत: कहा जा सकता है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती का समाज सुधार और वर्ण व्यवस्था पर दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से यही दिखाता है कि वे जन्म के आधार पर भेदभाव का विरोधी थे। उनके अनुसार वर्ण का निर्धारण गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर होना चाहिए, न कि जन्म से। उन्होंने शूद्रों और स्त्रियों को वेद अध्ययन और गुरूकुल में शिक्षा का समान अधिकार दिया, दलितों के सम्मान और उत्थान के लिए प्रेरक कार्य किए, और छुआछूत व ऊँच-नीच के भेद को समाप्त करने का मार्ग दिखाया। उनके

प्रयासों से आर्य समाज ने दलितोद्धार, निःशुल्क शिक्षा, और सामाजिक समानता के क्षेत्र में क्रियात्मक कदम उठाए, जिससे समाज में आत्मविश्वास और समानता का संचार हुआ। महात्मा गांधी और अन्य सुधारक उनके कार्यों से प्रेरित हुए। महर्षि दयानन्द का योगदान समानता, शिक्षा, सामाजिक न्याय और राष्ट्र की एकता के क्षेत्र में दूरगामी और क्रांतिकारी साबित हुआ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार - आर्य समाज का इतिहास, प्रथम भाग, आर्य स्वाध्याय केन्द्र, नयी दिल्ली, 1982*
2. *डॉ. बाबूराम शास्त्री-महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीय, धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं की प्रासंगिकता, दयानन्द वैदिक शोध-पीठ, अजमेर, 1991*
3. *स्वामी सत्यानन्द - श्री मद्दयानन्द प्रकाश, गोविन्दराम हासानन्द, आर्य साहित्य भवन, दिल्ली, 1950*
4. *डॉ. भवानी लाल भारतीय ऋषि दयानन्द : सिद्धान्त और जीवन दर्शन, श्री घूडमल प्रहलाद कुमार आर्य धमार्थ न्यास, हिण्डौन सिटी (राजस्थान), 2013*
5. *दयानन्द सरस्वती-सत्यार्थ प्रकाश, सम्पादक-पं. भगवद्दत्त, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली, 2008*
6. *डॉ. रामकृष्ण आर्य - महर्षि दयानन्द का आर्थिक चिन्तन, आर्य प्रकाशन समिति, कोटा, 1991*
7. *भाष्य भूमिका वैदिक मंत्रालय, अजमेर 1984 10/90/12*
8. *डॉ. राम प्रकाश आर्य - महर्षि दयानन्द सरस्वती (जीवन व हिन्दी रचनाएं) वैदिक पुस्तकालय, अजमेर, 1995*
9. *डॉ. रामकृष्ण आर्य - स्वामी दयानन्द की वैदिक समाज व्यवस्था और कार्ल मार्क्स का साम्यवादी समाज दर्शन, आर्य परिवार प्रकाशन समिति, कोटा (राज.) 2000*
10. *हर बिलास शारदा - लाईफ ऑफ दयानन्द सरस्वती, वैदिक यंत्रालय, अजमेर 1968*
11. *महर्षि दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य - 30/5, उव्वट महीधर, भाष्य संहिता, मोतीलाल बनारसीदास, काशी, 1972*
12. *वेद तीर्थ नरदेव शास्त्री-आर्य समाज का इतिहास प्रथम भाग, पं. रामजीलाल शर्मा, प्रयाग वि.सं. 1975*
13. *डॉ. भवानी लाल भारतीय - नवजागरण के पुरोधा: दयानन्द सरस्वती, वैदिक पुस्तकालय, अजमेर 1983*
14. *राधेश्याम पारीक - कान्ट्रिब्यूशन ऑफ आर्यसमाज इन द मेकिंग ऑफ मॉडर्न इण्डिया (1875-1947) सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली 1973*
15. *आर्य प्रतिनिधि सभा, फाईल नं. - 12, नवम्बर 1905, प्रासांक 430*
16. *हरिजन, 2 अगस्त 1934*
17. *वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1933*
18. *सार्वदैशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली, 1983*